© UNIVERSAL RESEARCH REPORTS | REFEREED | PEER REVIEWED
ISSN : 2348 - 5612 | Volume : 04 , Issue : 07 | October - December 2017

दलित चेतना एवं दलित विमर्श : अंतर एवं अंतर्संबंध

अनीता, प्राथमिक शिक्षिका, राजकीय प्राथमिक पाठशाला, हरिजन बस्ती, जीन्द (हरियाणा)।

साहित्य केवल सामाजिक यथार्थ का निरूपक ही नहीं है बल्कि वैचारिक क्रांति का वाहक भी है। समय समय पर हुए दलित साहित्य से संबंधित विमर्श ने उसका स्वरूप निर्धारित करने का प्रयास किया है। हिंदी में दलित साहित्य के प्रादुर्भाव से पहले ही दलित -विमर्श की प्रक्रिया विद्यमान थी। जो निश्चित रूप से भारतीय जनजागरण की चेतना का ही परिणाम है। बीसवीं एवं इक्कीसवीं सदी के साहित्यकारों ने दलित विमर्श की इस प्रक्रिया को उद्घाटित करने का प्रयास किया है। उन्होंने दलित समाज की सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक समस्याओं का गहन अध्ययन करके उनका समाधान खोजने का प्रयास किया है।

ISSN : 2348-5612 © URR
9 770234 856124

समय समय पर दलित विमर्श पर आधारित सम्मेलन और सभाएँ होती रहती हैं। लेकिन दलित लेखकों का सबसे पहला सम्मेलन बम्बई में दलित साहित्य संघ द्वारा 1958 ई० में आयोजित किया गया। विभिन्न भाषाओं में रचित साहित्य ने दलित विमर्श पर होने वाली विभिन्न चर्चाओं को लिखित आधार प्रदान किया तथा समाज के इस मूक वर्ग को वाणी प्रदान की।

मराठी दलित लेखक शरण कुमार लिम्बाले 'दलित विमर्श' को परिभाषित करते हुए कहते हैं कि "आह का उदात्त रूप है, दलित की वेदना। दलित विमर्श की जन्मदात्री यह वेदना किसी एक की नहीं और न ही एक दिन की है, वरन् हजारों वर्षों से हजारों व्यक्तियों की है। अतः इसका स्वरूप सामाजिक है और स्वर विद्रोही एवं नकारात्मक है।" दलित चिंतक 'कँवल भारती' "दलित विमर्श की भूमिका" पुस्तक में कहते हैं कि दलित विमर्श सिर्फ एक जातीय विमर्श नहीं है, जैसी कि आम धारणा है कि किसी दलित समस्या को लेकर किया गया विमर्श ही दलित विमर्श है। यह धारणा गलत है। दलित विमर्श के केन्द्र में दलित समस्या को नहीं नकारा जा सकता । पर यह समस्या एक राष्ट्रीय समस्या के रूप में है। इसके केन्द्र में दलित मुक्ति का प्रश्न राष्ट्रीय मुक्ति का प्रश्न है। करोड़ों लोगों के लिए अलगाववाद का जो समाजशास्त्र और धर्मशास्त्र ब्राह्मणों ने निर्मित किया , उसने राष्ट्रीयता को खंडित किया था और उसी के कारण भारत अपनी स्वाधीनता खो बैठा था। इसलिए दलित विमर्श के केन्द्र में वे सारे सवाल हैं; जिनका संबंध भेदभाव से है, चाहे यह भेदभाव जाति के आधार पर हो, रंग के आधार पर , नस्ल के आधार पर हो, लिंग के आधार पर हो या फिर धर्म के आधार पर ही क्यों न हो।" प्रो० रोहिणी अग्रवाल इस प्रश्न पर व्यापक बहस का आह्वान करती हैं कि किसी भी समतामूलक समाज व्यवस्था में क्या जन्म के आधार पर मनुष्यों का ऊँच-नीच में वर्गीकरण न्यायसंगत है? यदि ऐसी कोई व्यवस्था शोषितों के अज्ञात एवं मूल समर्पण के कारण सदियों से अपनी अहम्मन्यता और उद्धतता को श्रेष्ठता दंभ से पोषित करती आई है, तो क्या उस व्यवस्था को यथावत् बने रहने देना चाहिए ? ऐसी अवस्था में चेतन दलित वर्ग द्वारा उक्त व्यवस्था को पलटने का आंदोलन क्या वैध एवं मानवीय नहीं।"

दलित विमर्श के लक्ष्य को विस्तार से स्पष्ट करते हुए डा० रमणिका गुप्ता कहती हैं कि " इसमें कोई दो राय नहीं है कि दलित चेतना परिवर्तन के दौर से गुजरती निरंतर शिखर की ओर बढ़ने वाली उर्ध्वगामी चेतना है, इसका अंतिम लक्ष्य मनुष्य के जीने हेतु समानता, भाईचारा और स्वतंत्रता की जरुरी शर्तों की प्राप्ति है। समानता के अर्थ में ही निहित है कि मानवीय संबंधों के स्तर पर कोई श्रेष्ठ या अश्रेष्ठ नहीं है, न ही जन्म के कारण और न ही धन, बल या कर्म अथवा भाग्य-भगवान के कारण। यानि एक शोषण रहित, जातीय भेदभाव रहित, मानवीय समाज की सत्ता ही इसका अभीष्ट रहा है। इस अवधारणा में दूसरे की कमी या कमजोरी को दूर करना सबल का कर्तव्य माना जाता है, अहसान नहीं। एक दूसरे के स्वामी या दास नहीं बल्कि एक दूसरे के सहयोगी बनकर जीना, समूह में जीना इसका संचारी भाव है। यह भी एक सत्य है कि समानता बिना स्वतंत्रता के आ ही नहीं सकती और जहां वर्चस्व और दासता की व्यवस्था होगी वहां स्वतंत्रता हो ही नहीं सकती ।" 'दलित सपनों का भारत और यथार्थ' नामक पुस्तक में रमणिका जी ने माना है कि मोटे तौर पर यह दलित विमर्श का सैद्धांतिक पक्ष है जिसे पेरियार, महात्मा फुले और बाबा साहब अंबेडकर ने एक आकार दिया। ज्योतिबा फुले द्वारा सन् 1873 में लिखी 'गुलामगिरी वास्तव में शूद्रों-अति शूद्रों

की मुक्ति का घोषणा पत्र माना जाता है। बाबा साहब ने इस चेतना को राष्ट्रीय स्तर पर पहुँचाया जो आज राष्ट्रीय सीमा के पार विमर्श का विषय बना हुआ है। डा० अंबेडकर के तीन सूत्र शिक्षा, संघर्ष और संगठन दलित आंदोलन के मूल आधार हैं। । दलित चिंतक और आलोचक ' ओमप्रकाश वाल्मीकि' 'दलित विमर्श' के उद्भव के कारणों उद्देश्यों और दायित्वों को 'दलित साहित्य का सौंदर्य शास्त्र' में रेखांकित करते हैं, " हजारों साल के ऐतिहासिक परिदृश्य में दलितों ने जो सामाजिक उत्पीड़न सहा है, विषमताएँ झेली हैं। भेदभाव एवं शोषण ने उनके मस्तिष्क पर जो गहरी रेखाएँ खींची हैं, ऐसी वर्ण व्यवस्था से उपजी विषमताओं और विसंगतियों को दृष्टि में रखकर , दलित साहित्य का विश्लेषण करके ही वे सौंदर्य-शास्त्र और साहित्यिक मूल्यांकन के अध्ययन की दिशा में आगे बढ सकते हैं। साहित्यिक सृजन दलित जीवन के यथार्थ को प्रतिबिंबित करने के साथ ही उसे पहचानने का भी एक साधन है। साहित्य और कला के प्रति यह दृष्टिकोण सामाजिक व्यवस्था में साहित्य के महत्व का उचित मूल्यांकन भी है।

विमल थोरात के अनुसार, "दलित विमर्श उस विद्रोह का उन्मेष है जो किसी विशिष्ट जाति या व्यक्ति के विरुद्ध नहीं बल्कि स्व की खोज में निकले हुए एक पूरे समाज का पूर्व परम्पराओं से विद्रोह है एवं अपने अस्तित्व की स्थापना का प्रयास है।"

दलित विमर्श समाज सापेक्ष है, जो मनुष्य की स्वतंत्रता, समता और बंधुत्व की भावना को सर्वोपरि मानकर उसकी दबी हुई अस्मिता को प्राणवान मानव- आस्मिता का हिस्सा बनाने की लड़ाई लड़ रहा है। दलित लेखकों ने दलित विमर्श के माध्यम से दलित अस्मिता की स्थापना कर हीन ग्रंथि को तोड़ते हुए स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व की स्थापना पर जोर देना ही इसका मुख्य उद्देश्य रहा है। साथ ही भारतीय समाज - व्यवस्था ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र चारों वर्णों में विभाजित क्रम को नकारते हुए , वैदिककालीन सांस्कृतिक व्यवस्था को उलट कर मानवतावादी चिंतन पर जोर देना चाहते हैं ताकि एक समतामूलक समाज की स्थापना हो सके । उसमें किसी प्रकार का कोई भेदभाव न हो।

दलित चेतना मनुष्य की स्वतंत्रता की पक्षधर है। यह वर्ग विहीन समाज की स्थापना के लिए प्रतिबद्ध है एवं बदलाव की प्रक्रिया को गतिशीलता प्रदान करती है।
दलित चेतना के स्वरूप पर विचार करते हुए दलित लेखक व चिंतक ओमप्रकाश वाल्मीकि 'दलित साहित्य का सौंदर्य शास्त्र में लिखते हैं कि "दलित चेतना का सीधा सरोकार -'मैं कौन हूँ? मेरी पहचान क्या है?' से बहुत गहरे तक जुड़ा हुआ है।" जो दलितों की सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और सामाजिक भूमिका की छवि के तिलिस्म को तोड़ती है, वह है दलित चेतना। दलित मतलब मानवीय अधिकारों से वंचित, सामाजिक तौर पर जिसे नकारा गया हो, उसकी चेतना। यानि दलित चेतना।

"भारतीय समाज व्यवस्था को समझे बगैर दलित चेतना की तीव्रता का अहसास कठिन है। हजारों वर्ष की प्रताड़ना, शोषण, द्वेष, वैमनस्य और भेदभाव से दबा दलित अपनी अस्मिता की खोज के लिए जागरूक दिखाई पड़ता है। ऐतिहासिक परिदृश्य में उसे अपनी पहचान कहीं दिखाई नहीं पड़ती। अतीत उसके लिए नर्क से भी भयावह है।"

ओमप्रकाश जी अपनी बात को आगे बढ़ाते हुए कहते हैं कि "दलित चेतना - जो कि दलित आंदोलनों के एक लम्बे इतिहास की देन है, अलग-अलग कालखंडों में यह अलग रूपों में दिखाई देती है।भक्तिकालीन काव्य में इसका अलग रूप है, लेकिन इस चेतना के बीज अवश्य मौजूद हैं, जिसे कालान्तर में एक संघर्षशील बौद्धिक रूप मिलता है। दलित चेतना की यही परम्परा ज्योतिबा फुले के ज्ञानदर्शन से विकसित होती हुई डॉ० अंबेडकर के जीवन संघर्ष से एक नए जुझारू रूप में प्रस्फुटित होती है। जिसे मुक्ति संघर्ष की चेतना कहना ज्यादा प्रासंगिक होगा। यही चेतना साहित्य की प्रेरणा बनकर दलित साहित्य के रूप में दिखाई देती है, जिसमें मुक्ति एवं स्वतंत्रता के गंभीर सरोकार विद्यमान हैं। वर्ण-व्यवस्था का विरोध, सामंतवाद का विरोध जैसे सवाल दलित चेतना के सरोकारों में शामिल हैं।"

दलित चेतना जीवन की उन तमाम बंदिशों से मुक्त होने की चेतना है जो सवर्ण या ब्राह्मणवादी समाज ने हिन्दू धर्म ग्रन्थों के माध्यम से दलित वर्ग पर थोप दी गई थी।

डॉ० जयंतीलाल माकड़िया "हिन्दी कविता में दलित चेतना : एक अनुशीलन" में 'दलित चेतना को परिभाषित करते हुए लिखते हैं कि "दलित चेतना फुले-अंबेडकरी विचार और बौधत्व से ओत-प्रोत है। इन विचारों की पृष्ठभूमि और दिशानिर्देशन के साथ

सामाजिक परिवर्तन और बहुजन हिताय की भावना को साहित्य में प्रस्तुत करने वाली चेतना ही दलित चेतना है। यह चेतना उभयपथगामिनी है। एक तरफ वह यथार्थ को समाज के सामने प्रस्तुत करती है दूसरी और यथार्थ की भयावहता के निवारण के लिए कार्यरत है। समता, बंधुत्व और न्याय के लिए कार्यरत यह चेतना, क्रांति और प्रतिक्रांति के स्वरों को साथ लिए संघर्षरत है, फिर भी यह रक्तहीन क्रांति समाज में आमूलचूल परिवर्तन लाने का हौंसला रखती है।"

दलित चेतना हिंदू संस्कृति के 'सत्यम शिवम् सुन्दरम्' की अवधारणा पर विश्वास नहीं करती। वह स्वतंत्रता, समानता, बंधुत्व एवं न्याय में विश्वास नहीं करती। डॉ० बाबा साहब अंबेडकर का 'शिक्षा, संगठन और संघर्ष' दलित चेतना का बीज मंत्र है। वह हिंदू परम्परा व संस्कृति की देन अपमान, घृणा, दरिद्रता, अशिक्षा व अस्पृश्यता को अस्वीकार करती है। डॉ० अंबेडकर ने मूकनायक, बहिष्कृत भारत, जनता, समता पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से दलितों को उनकी स्थिति के प्रति सचेत करते हुए उन्हें उनके अधिकारों से अवगत करवाया और साउथ ब्यूरो कमीशन, साइमन कमीशन तथा गोलमेज सम्मेलन, ब्रिटिश शासकों तथा भारतीय नेताओं को दलितों की माँगों से अवगत कराते हुए, उनकी मुक्ति व स्थिति में सुधार पर जोर दिया। डॉ० अंबेडकर का मार्क्स की तरह आभिमत था कि "उन संस्थाओं एवं व्यक्तियों को उत्पीड़ित वर्गों के हितों की रक्षा करने का कोई अधिकार नहीं है, जिनकी बागडोर अछूतों के हाथों में नहीं है।" उन्होंने काला राम मंदिर प्रवेश, महार के चवदार तालाब का सत्याग्रह, मनुस्मृति दहन एवं बौद्ध धर्म को अंगीकार करते हुए हिंदू व्यवस्था के धार्मिक-सांस्कृतिक वर्चस्व के खिलाफ संघर्ष का ऐलान कर दिया। रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इंडिया का गठन कर दलितों में राजनैतिक विचारधारा को पैदा करते हुए दलितों में चेतना को नया आयाम प्रदान किया।

सुविख्यात साहित्यकारा रमणिका गुप्ता 'दलित चेतना साहित्यिक एवं सामाजिक सरोकार' में दलित चेतना पर लिखती हैं कि " दरअसल दलित चेतना सामाजिक चेतना का दूसरा नाम है। भारत का पूरा का पूरा समाज एक पक्षीय, जिसमें एक बड़े हिस्से को जड़, पशुवत् बना दिया गया था। दलित चेतना उस जड़ता और पशुता को तोड़ती है। उसका साहित्य उसे वाणी देता है, अभिव्यक्ति की वह शक्ति देता है। जिससे वह वंचित था, इसलिए उस पक्ष द्वारा जो उसकी कीमत पर सब सुविधाएँ भोगता था, हमला करना स्वाभाविक है।"

दलित चिंतक 'कँवल भारती' 'दलित विमर्श की भूमिका में दलित चेतना पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं कि "दलित चेतना की बात करें तो सही रूप में दलित चेतना का प्रश्न ज्योतिबा फुले के द्वारा अपनी कालजयी कृति 'गुलामगिरी' 1873 ई०में ब्राह्मणवाद पर जोरदार आघात करते हुए वैदिक, पौराणिक परम्पराओं के विरोधात्मक स्वर में
"मनु जलकर खाक हो गया, जब अंग्रेज आया।
ज्ञानरूपी माता ने हमको है दूध पिलाया।
अब तुम भी पीछे न रहो भाइयो।
जलाकर खाक करदो मनुवाद को।"
सन् 1873 में 'सत्यशोधक समाज' की स्थापना कर छुआछूत, धर्मभेद, जाति-पाति, वर्णभेद जैसी नीति का विरोद करते हुए शिक्षा रूपी ज्ञान प्राप्ति पर बल दिया।

इसी दिशा में केरल के दलित साहित्य की पृष्ठभूमि के नारायणा गुरू का आन्दोलन दलित चेतना में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हुए दिखाई देते हैं। 'अयप्पा पणिक्कर' के अनुसार "ये नारायण गुरु थे, जिन्होंने बड़े तर्कसंगत ढ़ंग से सभी जातियों के मनुष्यों में भ्रातृ भाव का प्रतिपादन किया। कवि होने के नाते नारायण गुरु आलंकारिक भाषा में सामाजिक क्रांति का नेतृत्व कर सकते थे।" 'अरूविप्पुरम्' में 'अछूत' शिव की मूर्ति की स्थापना, उनके प्रतिरोध का एक काव्यात्मक तरीका था। नारायणा गुरु ने 'जाति मत पूछो, जाति मत बताओ और जाति के बारे में मत सोचो' के नारे को लोकप्रिय बनाकर देश से जातिप्रथा के दंश को समाप्त करने का प्रयास किया। दूसरी तरफ 'रामास्वामी पेरियार' की भूमिका भी अविस्मरणीय है, जिन्होंने ब्राह्मणवादी व्यवस्था के विरूद्ध मोर्चा खोलते हुए वर्ण व्यवस्था के भेदभाव को खत्म करते हुए सामाजिक समता स्थापित करने का प्रयास किया। दलितों को आजादी के महत्व को बताते हुए धार्मिक, सांस्कृतिक असमानता को नकारते हुए , मानवतावादी संस्कृति की स्थापना पर बल दिया।

इस प्रकार कह सकते हैं कि दलित चेतना बुद्ध , कबीर, ज्योतिबा फुले, नारायणा गुरु व डॉ० अंबेडकर के वैचारिक दर्शन से

प्रभावित होकर दलित मानव के अस्तित्व को खोजते हुए , समाज में मानवीय मूल्यों की स्थापना करना है। दलित चेतना एवं दलित विमर्श के प्रश्न पर विचार करने के बाद इन दोनों के अंतर्संबंध पर प्रकाश डालना भी आवश्यक है। डॉ० पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी लिखते हैं कि "दलित चेतना में जीवन की तमाम घटनाओं को बुद्धि, विज्ञान तथा तर्क की कसौटी पर कसकर देखती है तथा उसी की रोशनी में जीवन और जगत की घटनाओं को व्याख्यायित करने का प्रयास भी करती है। यह अबौद्धिक, अतार्किक एवं अंधी आस्था का विरोध करती हुई पाखण्डों का खंडन कर के तर्क सम्मत बातों को ही स्वीकार करने के लिए लोगों को प्रेरित करती है। जबकि विमर्श वाद-विवाद करते हुए किसी समस्या स्थिति को एक कोण से न देखकर भिन्न मानसिकताओं व दृष्टियों से उलट पलट कर देखने का प्रयास करता है। दलित विमर्श भारतीय समाज व्यवस्था में व्याप्त वर्ण व्यवस्था की कोख से उत्पन्न जाति व्यवस्था से या यूँ कहें कि जाति व्यवस्था में व्याप्त अस्पृश्यता की दारुण वेदना से पैदा हुआ है। इसके केन्द्र में वे सभी शोषित समाज हैं जो किसी न किसी प्रकार से शोषण प्रक्रिया से पीड़ित हैं। दलित विमर्श उसके विरोध में आवाज उठाते हुए समानता व भाईचारे के भाव को जागृत करता है। वरिष्ठ दलित साहित्यकार व चिंतक डॉ० म० न० वानखेड़े जी अंतर्संबंध के प्रश्न पर कहते हैं कि "अफ्रीका के नीग्रो लेखकों की तरह दलित लेखक भी भली भांति समझ चुका है कि दया की भीख मांगकर जिया नहीं जा सकता। वह समझ गया है कि विद्रोह किए बिना यह पाश नहीं टूटेगा। इसलिए अब उसने अपनी चेतन अवस्था से गुजरते हुए क्रोध को अभिव्यक्ति देने के लिए कलम उठाई है। उसे पता है कि विरोध का झंडा उठाए बिना ये सीमाएं नहीं टूटने वाली। परंतु सीमाओं को तोड़ने का मतलब यह भी नहीं है कि उसे समाज से अलग हो जाना है। उसे तो समाज में रहते हुए अपना विरोध जताना है। अंतर है तो बस इतना कि दया याचना के स्थान पर अब वह आग उगलने लगा है।"

दलित चेतना एवं दलित विमर्श दोनों ही हिंदू संस्कृति की "सत्यम् शिवम् सुंदरम्" की अवधारणा पर विश्वास नहीं करते। ये दोनों ही दलित मानल की मुक्ति के प्रश्न पर डॉ० अंबेडकर एवं ज्योतिबा फुले के वैचारिक दर्शन को स्वीकारते हुए धर्म के नाम पर वास्तविकता को छिपाने वाले ढोंग-पाखंडों को नकारते हैं। साथ ही दलित, आदिवासी, स्त्री व मानव के कल्याण की बात करते हुए मानवतावादी दृष्टिकोण की वकालत करते हैं ताकि समाज में किसी प्रकार का शोषण लिंग, धर्म, वर्ण व नस्ल के आधार पर न हो। डॉ० एन० सिंह कहते हैं कि "दलित चेतना समाज और साहित्य में शताब्दियों से चली आ रही गली सड़ी परम्पराओं पर बेदर्दी से चोट करती है। शोषण और अत्याचार के बीच हताश जीवन जीने वाले को लड़ना सिखाती है। यह सिर पर पत्थर ढ़ोने वाली मजदूर महिला को उसके अधिकारों के विषय में सचेत करती है। मनुष्म मात्र को धर्म की भूल भुलैया से निकालकर शोषण से मुक्ति का मार्ग दिखाती है।" 'डॉ० अजमेर सिंह काजल' 'दलित चिंतन के आयाम' में दलित विमर्श के विषय में लिखते हैं कि "दलित विमर्श एक ऐसी अवधारणा है जो आधुनिक मूल्यों, संवैधानिक मान्यताओं, सामाजिक न्याय एवं जनतांत्रिक रचनाओं के संघर्षों से विकसित हुई है। इसमें धार्मिक जीवन की विकृतियों के विरूद्ध मानवता का चिंतन है। दलित विमर्श जहां अपने पुरोधाओं की रचनाशीलता, बौद्धिकता व आंदोलनों से बहुत कुछ ग्रहण करता है, वहीं समानांतर रूप से भारतीय संविधान में दलितों, आदिवासियों, महिलाओं के उत्पीड़न की समाप्ति हेतु प्रदत्त प्रावधानों एवं अनुपालन में उठने वाले स्वरों व जनांदोलनों से शक्ति लेता है। यह विमर्श आध्यात्मिक मूल्यों के नाम पर समाज में फैले प्रपंच, ढोंग एवं धार्मिक भ्रष्टाचार की खबर लेने के साथ-साथ दलितों का अपमान व उत्पीड़न करने वाले हिंदू धर्मशास्त्रों, स्मृतियों और उनके तथाकथित जनक और धरती पर उसके प्रतिनिधि 'भूदेव' के जन्मना विशेषाधिकारों की व्यवस्था पर अनेक प्रश्नचिह्न लगाता है।"
अतः विभिन्न विद्वानों द्वारा किए गए वर्णन के आधार पर हम कह सकते हैं कि दलित चेतना व दलित विमर्श का अंतर्संबंध बहुत गहरा है। दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं क्योंकि चेतना के बिना विमर्श का अस्तित्व नहीं। उसी प्रकार विमर्श के द्वारा ही सही रूप में चेतना के अर्थ व विकास को समझा जा सकता है। दलित चेतना दलितों को स्वयं के शोषण से अवगत कराते हुए उसके कारणों की खोज के लिए प्रेरित करती हुई उसके समाधान हेतु प्रयास है तो दलित विमर्श में स्वयं के शोषण के कारणों के हरेक पहलू को समझकर उसकी मुक्ति की जाँच पड़ताल कर मुक्तिमार्ग खोजने का प्रयास करते हैं। साथ ही इन दोनों का संबंध दलित व्यक्ति की पहचान कर उसके प्रति हजारों वर्षों के शोषण एवं अत्याचार के विरुद्ध आवाज उठाते हुए रंग, लिंग, जाति व धर्म के अंतर को नकारते हुए मानवतावादी समाज की स्थापना करना है।

संदर्भ---------

1. डॉ० नगेन्द्र, मानविकी पारिभाषिक कोष, साहित्यिक खंड, पृष्ठ 89

2. आचार्य रामचंद्र वर्मा, शब्दार्थ-विचार कोष, पृष्ठ 50

3. प्रो० रोहिणी अग्रवाल, इतिवृत की संचेतना और स्वरूप, पृष्ठ 264

4. कँवल भारती, दलित विमर्श की भूमिका, पृष्ठ 17, 106, 108

5. रमणिका गुप्ता, दलित सपनों का भारत और यथार्थ, रमणिका फाऊंडेशन, नई दिल्ली, 2001, पृष्ठ 1

6. ओमप्रकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य का सौंदर्य शास्त्र, पृष्ठ 29, 30, 48, 49, 50, 58, 59, 64

7. डॉ० जयंतीलाल माकड़िया, हिंदी कविता में दलित चेतना : एक अनुशीलन, पृष्ठ 45-49

8. सं० लालचंद गुप्ता मंगल, हिंदी साहित्य: वैचारिक पृष्ठभूमि, पृष्ठ 113, 213, 214, 218

9. चमनलाल, दलित और अश्वेत साहित्य: कुछ विचार, पृष्ठ 39

10. तेज सिंह, हिंदी उपन्यास: दलित विमर्श का पुनराख्यान, हंस, जनवरी 2001, पृष्ठ 1

11. डॉ० अजमेर सिंह काजल, दलित चिंतन के आयाम, पृष्ठ 13